International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 17-07-2026, Accepted: 17-08-2026, Published: 01-09-2026
Volume 12, Issue 3, 2026, Page No. 133-137

उड़िया और हिंदी की प्रगतिवादी कविता का तुलनात्मक अध्ययन

अमिय कुमार साहु
प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, राष्ट्रीय रक्षा अकदमी, खडकवासला, पुणे, महाराष्ट्र, भारत
DOI: https://doi.org/10.66856/ijhr.2026.12.3.12224

सारांश
बीसवीं शताब्दी के तीसरे–चौथे दशक में भारत की विभिन्न भाषाओं के साहित्य में एक साथ एक नई चेतना का उदय हुआ, जिसे "प्रगतिवाद" या "प्रगतिशील आंदोलन" के नाम से जाना जाता है। यह आंदोलन केवल हिंदी तक सीमित नहीं रहा, बल्कि बांग्ला, उर्दू, मराठी, तमिल और उड़िया जैसी भाषाओं में भी लगभग समान समय में इसकी लहर पहुँची। इसका मूल कारण उस समय का सामाजिक–आर्थिक और राजनीतिक परिवेश था — औपनिवेशिक शासन का दमन, 1930 के दशक की आर्थिक मंदी, किसानों–मजदूरों की दुर्दशा, तथा रूसी क्रांति और मार्क्सवादी विचारधारा का बढ़ता प्रभाव। इन परिस्थितियों ने साहित्यकारों को यथार्थ के धरातल पर लाकर खड़ा कर दिया और कल्पना–प्रधान, वैयक्तिक भावनाओं से भरी रोमानी कविता के स्थान पर समाज, वर्ग–संघर्ष और जनजीवन को केंद्र में रखने वाली कविता का सूत्रपात हुआ।
हिंदी और उड़िया दोनों भाषाओं में प्रगतिवादी काव्य–धारा का उद्भव लगभग समकालिक रहा, परन्तु दोनों की सामाजिक–राजनीतिक पृष्ठभूमि, संगठनात्मक स्वरूप और साहित्यिक परिणतियों में महत्त्वपूर्ण भिन्नताएँ भी दिखाई देती हैं। तुलनात्मक साहित्य के दृष्टिकोण से यह अध्ययन इसलिए भी सार्थक है कि यह दिखाता है कि किस प्रकार एक ही वैचारिक प्रेरणा (मार्क्सवाद और अंतरराष्ट्रीय प्रगतिशील लेखक आंदोलन) क्षेत्रीय सामाजिक यथार्थ के अनुसार भिन्न–भिन्न रूपों में अभिव्यक्त हुई। प्रस्तुत शोध–पत्र में हिंदी और उड़िया प्रगतिवादी कविता की पृष्ठभूमि, प्रमुख कवियों, काव्य–प्रवृत्तियों तथा भाषा–शैली का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

मूल शब्दः प्रगतिवाद, हिंदी कविता, ओड़िया कविता, तुलनात्मक अध्ययन, सामाजिक यथार्थ, वर्ग–संघर्ष, किसान चेतना, श्रमिक जीवन, जनवाद, मानवतावाद

प्रस्तुत शोध–पत्र में तुलनात्मक साहित्य की स्थापित पद्धति का अनुसरण करते हुए हिंदी और उड़िया प्रगतिवादी काव्यधाराओं का समांतर विश्लेषण किया गया है। इसके लिए दोनों भाषाओं के प्रगतिवादी आंदोलन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, संगठनात्मक ढाँचे, प्रमुख रचनाकारों की कृतियों तथा समकालीन एवं परवर्ती आलोचकों के मतों का अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य यह जाँचना है कि एक ही अखिल भारतीय एवं अंतरराष्ट्रीय वैचारिक प्रेरणा — मार्क्सवाद तथा प्रगतिशील लेखक आंदोलन कृ ने किस प्रकार दो भिन्न भाषा–क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न साहित्यिक स्वरूप ग्रहण किए, और इस भिन्नता के पीछे कौन–से सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक कारक उत्तरदायी रहे। इसके साथ ही यह अध्ययन क्षेत्रीय भाषाओं के प्रगतिशील साहित्यिक योगदान को अखिल भारतीय साहित्य–इतिहास के परिप्रेक्ष्य में रखने का भी प्रयास करता है, क्योंकि प्रायः हिंदी–केंद्रित साहित्य–इतिहास लेखन में उड़िया जैसी भाषाओं के समांतर आंदोलनों की चर्चा सीमित रह जाती है।

हिंदी साहित्य में प्रगतिवाद: उद्भव और पृष्ठभूमि

हिंदी साहित्य में प्रगतिवाद का प्रारम्भ सामान्यत: सन् 1936 से 1943 के मध्य माना जाता है। इस आंदोलन की वैचारिक जड़ें 1935 में लंदन में स्थापित "इंडियन प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन" में देखी जा सकती हैं, जिसका घोषणापत्र भारत में साहित्यकारों के लिए प्रेरणा का स्रोत बना। इसी क्रम में 1936 में लखनऊ में प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम अधिवेशन आयोजित हुआ, जिसकी अध्यक्षता मुंशी प्रेमचंद ने की। प्रेमचंद हिंदी–उर्दू एकता के समर्थक थे और साहित्य में एक नए युग की आहट को लेकर उत्साहित थे, तथा उनका मानना था कि इस नई चेतना को संगठित रूप देना आवश्यक है। [1]

यह आंदोलन मूलतः छायावाद की अतिशय कल्पनाशीलता, रहस्यवादी वैयक्तिकता और अंतर्मुखी प्रवृत्तियों की प्रतिक्रिया में उभरा। जहाँ छायावादी कवि सौंदर्य, प्रकृति और आत्मानुभूति में डूबे रहते थे, वहीं प्रगतिवादी कवियों ने कला की अपेक्षा जीवन को और व्यक्ति की अपेक्षा समाज को प्राथमिकता दी। रोचक बात यह है कि हिंदी में प्रगतिवाद का पहला महत्वपूर्ण कवि सुमित्रानंदन पंत को माना जाता है, जो स्वयं छायावाद के एक प्रमुख स्तंभ थे — उनकी रचना "युगवाणी" को प्रथम प्रगतिवादी काव्य–कृति कहा जाता है। यह दर्शाता है कि हिंदी में प्रगतिवाद छायावाद के भीतर से ही, एक क्रमिक वैचारिक रूपांतरण के रूप में उभरा। [2]
हिंदी प्रगतिवादी काव्यधारा के प्रमुख हस्ताक्षरों में नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन शास्त्री, शिवमंगल सिंह "सुमन", रामविलास शर्मा, रांगेय राघव तथा रामधारी सिंह दिनकर विशेष उल्लेखनीय हैं। नागार्जुन को इस काव्यधारा की रीढ़ और "प्रगतिवाद का शलाका पुरुष" कहा जाता है; वे मूलतः "गरीबों के कवि" के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इसी प्रकार केदारनाथ अग्रवाल की कविता में किसान–जीवन का यथार्थवादी और करुण चित्रण मिलता है। [3]

हिंदी प्रगतिवादी काव्य की प्रवृत्तियाँ और उदाहरण

हिंदी प्रगतिवादी कविता की कुछ केंद्रीय प्रवृत्तियाँ स्पष्ट रूप से चिह्नित की जा सकती हैं:

शोषक–शोषित का द्वंद्वः प्रगतिवादी कवियों ने समाज को दो वर्गों में बाँटकर देखा — शोषक (पूँजीपति, जमींदार, साहूकार) और शोषित (किसान, मजदूर)। केदारनाथ अग्रवाल की कई कविताओं में अकाल और भुखमरी से त्रस्त परिवार का चित्रण मिलता है, जिनमें एक पिता अपने ही पुत्र को बेचने जैसी हृदयविदारक स्थिति तक पहुँच जाता है — यह चित्रण उस समय के ग्रामीण भारत की आर्थिक विपन्नता का सजीव दस्तावेज़ बन जाता है। इसी प्रकार दिनकर ने अपनी कविताओं में महाजनों और सूदखोर व्यापारियों की आलोचना करते हुए उन्हें मानव–रक्त पर पलने वाला वर्ग बताया है, जो निर्धनों के शोषण से अपनी समृद्धि बनाते हैं। [4]

रूढ़ि–विरोध और बौद्धिकता: प्रगतिवादी कवियों ने ईश्वर, भाग्य, परलोक और पुनर्जन्म जैसी अवधारणाओं का खंडन करते हुए मानव की महत्ता को सर्वोपरि माना। नागार्जुन का व्यंग्य इस संदर्भ में विशेष रूप से तीखा और प्रभावशाली रहा है — उनकी कविताओं में तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था की जीर्ण–शीर्ण अवस्था और खोखली आज़ादी पर करारा कटाक्ष मिलता है। उनकी प्रसिद्ध कविता "अकाल और उसके बाद" में अकाल के बाद जीवन के धीरे–धीरे पुनः स्पंदित होने का प्रतीकात्मक चित्रण है — चूल्हे में आग जलने और बर्तनों की खनक लौटने जैसे छोटे–छोटे विवरणों के माध्यम से कवि जीवन की पुनर्स्थापना को अत्यंत संवेदनशील ढंग से व्यक्त करता है।

नारी–चेतना: प्रगतिवादी कविता में स्त्री को भी शोषित वर्ग के अंतर्गत रखा गया। कवियों ने पुरुष–प्रधान समाज की जड़ बंधनों से स्त्री की मुक्ति और उसकी गरिमा की पुनर्स्थापना का आह्वान किया।

भाषा–शैली: प्रगतिवादी कविता की भाषा सीधी, सहज, प्रखर और तीखी है। इसमें कजरी, लावनी, ठुमरी जैसे ग्राम्य गीत–रूपों का भी प्रयोग हुआ, जिससे कविता जनसाधारण के अधिक निकट पहुँच सके। [5]

त्रिलोचन शास्त्री की कविता में भी ग्रामीण जनपद और उसकी मिट्टी से गहरा जुड़ाव मिलता है — वे स्वयं को अपने जनपद का कवि कहते थे और उनकी रचनाओं में स्थानीय बोली, मुहावरे तथा किसान–जीवन की बारीकियों का यथार्थवादी चित्रण मिलता है। शिवमंगल सिंह "सुमन" की कविता में भी जीवन के प्रति गहरी आस्था और सामाजिक विश्वास का स्वर प्रमुख रहा, जिसमें दुख और संघर्ष के बावजूद भविष्य के प्रति आशावाद व्यक्त होता है। इन सभी कवियों में एक समान सूत्र यह है कि इन्होंने कविता को व्यक्तिगत भावाभिव्यक्ति के दायरे से निकालकर सामूहिक जीवन–संघर्ष की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया।

आलोचकों ने इस काव्यधारा के सामाजिक महत्व को स्पष्ट रूप से रेखांकित किया है। एक विश्लेषण के अनुसार, प्रगतिवादी काव्य–धारा कला की अपेक्षा जीवन को, व्यक्ति की अपेक्षा समाज को तथा स्वानुभूति की अपेक्षा सर्वानुभूति को प्रधानता देती है, और इसकी चेतना के बीज छायावाद के भीतर ही पल्लवित होने लगे थे। इस दृष्टि से प्रगतिवाद को छायावादोत्तर युग की सबसे सशक्त वैचारिक प्रतिक्रिया माना जा सकता है।

उड़िया साहित्य में प्रगतिवाद: उद्भव और पृष्ठभूमि

उड़िया साहित्य में प्रगतिवादी आंदोलन की शुरुआत हिंदी की तुलना में कुछ पहले, अर्थात् नवंबर 1935 में हुई, जब भागवती चरण पाणिग्राही ने अनंत पटनायक तथा अन्य साथियों के सहयोग से रेवेनशॉ कॉलेज, कटक की धरती पर "नवजुग साहित्य संसद" (Nabajuga Sahitya Sansad) की स्थापना की। यह संगठन उत्कल कांग्रेस समाजवादी संघ (Utkal Congress Samyabadi Sangha) की सांस्कृतिक शाखा के रूप में कार्य करता था और युवाओं में प्रगतिशील, क्रांतिकारी तथा उग्र विचारों के प्रसार के उद्देश्य से बना था। यह उल्लेखनीय है कि नवजुग साहित्य संसद की स्थापना अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के लखनऊ अधिवेशन (1936) से भी पहले हुई थी, जिससे यह भारत के आरंभिक प्रगतिशील साहित्यिक संगठनों में से एक बन जाता है। [6]

उड़िया प्रगतिवाद की एक विशिष्टता यह है कि इसका सीधा उदय "सबुज युग" (हरित युग) नामक रोमांटिक काव्यधारा की प्रतिक्रिया में हुआ। सन् 1920 में कालिंदी चरण पाणिग्राही (जो भागवती चरण के ही बड़े भाई थे) ने अन्नदाशंकर राय और बैकुण्ठनाथ पटनायक के साथ "सबुज समिति" का गठन किया था, जो रवीन्द्रनाथ टैगोर की काव्य–चेतना से गहराई से प्रभावित थी। (Kalindi Charan Panigrahi, Thuprai) यह अत्यंत रोचक ऐतिहासिक तथ्य है कि एक ही परिवार के दो भाई — कालिंदी चरण और भागवती चरण पाणिग्राही — उड़िया साहित्य की दो परस्पर–विरोधी वैचारिक धाराओं, क्रमशः रोमांटिक सबुज–आंदोलन और मार्क्सवादी प्रगति–आंदोलन, के प्रमुख प्रतिनिधि बने। [7]

भागवती चरण पाणिग्राही ने 1936 में "अधुनिक" नामक पत्रिका का संपादन किया, जो उड़िया की पहली स्पष्टतः प्रगतिवादी पत्रिका थी, यद्यपि यह वर्ष के भीतर ही बंद हो गई। इसके स्थान पर "प्रगति" नामक पत्रिका का प्रकाशन हुआ। नवजुग साहित्य संसद के उद्घाटन सत्र में स्वतंत्रता सेनानी मालती चौधरी ने अनंत पटनायक द्वारा रचित गीत "नबीन युगर तरुण जागरे" (नए युग के तरुण, जागो) गाया था, जो इस आंदोलन के उत्साह और आह्वान का प्रतीक बन गया। [8]

भागवती चरण पाणिग्राही का साहित्यिक जीवन अत्यंत अल्प रहा कृ 1943 में पुलिस हिरासत में उनकी रहस्यमय मृत्यु हो गई, परन्तु इससे पूर्व उन्होंने आदिवासी जीवन और ब्रितानी शोषण पर आधारित "शिकार" जैसी उल्लेखनीय कहानी लिखी, जिस पर आधारित होकर बाद में मृणाल सेन ने प्रसिद्ध फिल्म "मृगया" (1976) का निर्माण किया।

उड़िया प्रगतिवादी काव्य की प्रवृत्तियाँ और प्रमुख रचनाकार

उड़िया प्रगतिवाद में कविता के साथ–साथ कथा–साहित्य (लघुकथा, उपन्यास) की भी समान रूप से महत्वपूर्ण भूमिका रही, जो हिंदी की तुलना में एक विशेष अंतर है। अनंत पटनायक, भागवती चरण पाणिग्राही के अतिरिक्त इस धारा के अन्य महत्वपूर्ण नामों में सुरेंद्र मोहंती, गुरुचरण पटनायक, बासंती पटनायक तथा विनोद रौतरे उल्लेखनीय हैं। यहाँ तक कि सबुज आंदोलन के दो प्रमुख कवि — कालिंदी चरण पाणिग्राही और बैकुण्ठनाथ पटनायक — की उत्तरवर्ती रचनाओं में भी प्रगतिवादी आंदोलन का प्रभाव देखा जा सकता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि यह विभाजन पूर्णतः अभेद्य नहीं था।

उड़िया प्रगतिवादी लेखन का केंद्रीय स्वर मार्क्सवादी विश्व–दृष्टि से प्रेरित सामाजिक यथार्थवाद रहा। भागवती चरण और उनके सहयोगियों ने मार्क्सवाद को केवल राजनीतिक अस्त्र के रूप में नहीं, बल्कि साहित्यिक अभिरुचि में मौलिक परिवर्तन लाने के माध्यम के रूप में अपनाया — उनका उद्देश्य पाठकों की चेतना में एक साहित्यिक क्रांति के द्वारा गहरा बदलाव लाना था। "अधुनिक" पत्रिका में विश्व–राजनीति, फासीवाद, नात्सीवाद, जापान के सैन्यीकरण तथा आसन्न विश्व–युद्ध जैसे विषयों पर विचार–विमर्श मिलता है, जो उड़िया साहित्य में अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक चेतना का पहला उल्लेखनीय प्रवेश माना जाता है। अनंत पटनायक ने भी युद्ध की अनिवार्यता जैसे प्रश्नों पर लेखन करते हुए विश्व के किसानों–मजदूरों से साम्राज्यवाद के विरुद्ध एकजुट होने का आह्वान किया।

इस पीढ़ी के उत्तरवर्ती लेखकों में सुरेंद्र मोहंती का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिन्होंने प्रगतिवादी चेतना को आगामी दशकों में भी जीवित रखा और इसे नई सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप ढाला। इसी क्रम में अनंत पंडा, हरिश्चंद्र बडाल तथा ब्रह्मानंद पंडा जैसे रचनाकारों ने भी इस परंपरा को आगे बढ़ाया। यह भी ध्यान देने योग्य है कि उड़िया प्रगतिवादी लेखन में केवल वर्ग–संघर्ष ही नहीं, बल्कि आदिवासी समुदायों के जीवन और उनके शोषण का चित्रण भी एक महत्वपूर्ण विषय बना — भागवती चरण पाणिग्राही की कहानी "शिकार" इसका सशक्त उदाहरण है, जिसमें ब्रितानी शासन द्वारा आदिवासी विद्रोह के दमन की व्यथा को उजागर किया गया है। यह विषय–वैविध्य दर्शाता है कि उड़िया प्रगतिवाद ने केवल औद्योगिक मजदूर या

कृषक वर्ग तक सीमित न रहकर उपनिवेशवाद–विरोधी चेतना को भी अपने दायरे में समेटा।

हिंदी और उड़िया प्रगतिवादी काव्य के उदाहरण

1. **"अकाल और उसके बाद":** नागार्जुन यह कविता नागार्जुन की सर्वाधिक चर्चित प्रगतिवादी रचनाओं में से एक है। इसमें अकाल की भीषणता के बाद ग्रामीण जीवन के धीरे–धीरे पुनः स्पंदित होने का चित्रण है। कवि छोटे–छोटे घरेलू दृश्यों — जैसे चूल्हे में फिर से आग जलना, बर्तनों की खनक लौटना, कुत्तों का उछलना — के माध्यम से यह बताता है कि किस प्रकार निर्धनतम परिवार भी विपत्ति के बाद जीवन की डोर पुनः थाम लेते हैं। यह कविता प्रगतिवाद की उस विशेषता का उदाहरण है जिसमें व्यापक सामाजिक यथार्थ को अत्यंत सूक्ष्म, मानवीय विवरणों के सहारे व्यक्त किया जाता है।

2. **केदारनाथ अग्रवाल की किसान–केंद्रित कविताएँ (संग्रह: "फूल नहीं रंग बोलते हैं", "युग की गंगा"):** केदारनाथ अग्रवाल की अनेक कविताओं में अकाल, कर्ज और भुखमरी से त्रस्त किसान–परिवार का करुण चित्रण मिलता है। इनकी एक बहुचर्चित कविता में एक पिता को अपने ही बेटे को बेचने की हृदयविदारक स्थिति तक पहुँचते दिखाया गया है — यह चित्रण औपनिवेशिक भारत के ग्रामीण आर्थिक शोषण का एक तीखा दस्तावेज़ बन जाता है। इनकी कविताओं की विशेषता यह है कि वे बुंदेलखंडी लोक–जीवन की मिट्टी की गंध से भरी हैं।

3. **"वरदान माँगूँगा नहीं" — शिवमंगल सिंह "सुमन" (संग्रह: "मिट्टी की बारात", साहित्य अकादेमी पुरस्कार 1974):** इस कविता में कवि आत्मसम्मान और संघर्ष के प्रति दृढ़ प्रतिज्ञा व्यक्त करता है — वह न तो दया की भीख माँगता है, न ही किसी वरदान की कामना करता है, चाहे संघर्ष–पथ पर हार मिले या जीत। यह कविता प्रगतिवाद की उस प्रवृत्ति का उदाहरण है जिसमें व्यक्ति का आत्मगौरव सामाजिक संघर्ष की चेतना से जुड़ जाता है — व्यक्तिगत अस्मिता और सामूहिक प्रतिबद्धता एक साथ अभिव्यक्त होती हैं।

4. **"मैं उस जनपद का कवि हूँ":** त्रिलोचन शास्त्री त्रिलोचन की यह प्रसिद्ध कविता कवि और उसके जनपद (क्षेत्र) के बीच अभिन्न रिश्ते को व्यक्त करती है। कवि स्वयं को अपने गाँव, उसकी मिट्टी और उसके सामान्य जन का प्रतिनिधि मानता है, न कि किसी अलग–थलग कलाकार के रूप में। यह कविता प्रगतिवाद के उस सिद्धांत को मूर्त रूप देती है जिसमें कवि व्यक्ति–केंद्रित अभिव्यक्ति से हटकर सामूहिक जन–जीवन का प्रवक्ता बनता है।

उड़िया काव्य के उदाहरण

1. **"बाजी राउत" (Baji Rout):** सच्चिदानंद राउतराय, 1943 यह उड़िया प्रगतिवादी काव्य की सर्वाधिक ऐतिहासिक और प्रभावशाली रचनाओं में से एक मानी जाती है। यह एक दीर्घ कविता है जो बाजी राउत नामक एक किशोर नाविक के बलिदान की गाथा कहती है, जिसे ब्रितानी पुलिस ने गोली मारकर मार डाला था जब उसने पुलिस की नौका को नदी पार कराने से इनकार कर दिया था। इस कविता ने उड़िया पाठकों को गहराई से आंदोलित किया और इसे उपनिवेशवाद–विरोधी तथा जन–नायकत्व की प्रगतिवादी चेतना का प्रतीक माना जाता है। सच्चिदानंद राउतराय आगे चलकर ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित हुए और उन्होंने बीस से अधिक काव्य–संग्रह प्रकाशित किए, जिनमें ग्रामीण उड़िया जीवन पर आधारित "पल्लिश्री" तथा नगरीय स्त्री–जीवन की व्यथा पर आधारित "प्रतिमा नायक" भी उल्लेखनीय हैं।

2. **अनंत पटनायक की क्रांति–चेतना और मोहभंग की कविताएँ (संग्रह: "रक्तशिखा", "अबान्तर" — साहित्य अकादेमी पुरस्कार 1980):** अनंत पटनायक को उड़िया प्रगतिवादी काव्य में एक क्रांतिकारी कवि के रूप में जाना जाता है। उनकी कविताओं का विषय–क्षेत्र मार्क्सवादी क्रांति–चेतना से लेकर स्वतंत्रता के बाद उपजे मोहभंग तक फैला हुआ है। उन्होंने अपनी कविताओं की भाषा और रूप में भी नए प्रयोग किए, जो उस समय के अधिक पारंपरिक उड़िया कवियों से उन्हें अलग करते हैं। उनका गीत "नबीन युगर तरुण जागरे" (नए युग के युवा, जागो) नवजुग साहित्य संसद के उद्घाटन–समारोह में गाया गया था और यह आंदोलन के प्रारंभिक उत्साह का प्रतीक बन गया।

3. **गोदावरीश मोहापात्र की व्यंग्य–कविताएँ (पत्रिका: "नीयँखुंटा"):** गोदावरीश मोहापात्र ने अपनी पत्रिका "नीयँखुंटा" (जलती हुई मूसल/तीखा व्यंग्य) में राजनीतिक और सामाजिक आलोचना पर आधारित अनेक व्यंग्य–कविताएँ प्रकाशित की, जिन्होंने आधुनिक उड़िया कविता में व्यंग्य को एक नई विधा के रूप में स्थापित किया। यह ठीक वैसी ही प्रवृत्ति है जैसी हिंदी में नागार्जुन के व्यंग्य में दिखती है — दोनों ने हास्य और कटाक्ष को सामाजिक आलोचना का प्रभावी अस्त्र बनाया।

4. **भागवती चरण पाणिग्राही की कहानी "शिकार":** यद्यपि यह कविता नहीं अपितु एक लघुकथा है, फिर भी यह उड़िया प्रगतिवादी सृजन के महत्वपूर्ण उदाहरण के रूप में उल्लेखनीय है। इसमें आदिवासी समुदाय के जीवन और ब्रितानी शासन द्वारा उनके विद्रोह के दमन का यथार्थवादी चित्रण है। इस पर आधारित होकर मृणाल सेन ने 1976 में प्रसिद्ध फिल्म "मृगया" का निर्माण किया।

इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि दोनों भाषाओं की प्रगतिवादी कविता में एक समान आधारभूत प्रवृत्ति काम कर रही थी — शोषित और उपेक्षित वर्ग को कविता के केंद्र में लाना — परन्तु प्रत्येक भाषा ने अपने क्षेत्रीय यथार्थ (हिंदी में किसान–मजदूर का अकाल–पीड़ित जीवन, उड़िया में नाविक–बालक का बलिदान और आदिवासी शोषण) के अनुसार अपनी अलग काव्य–प्रतीक–योजना विकसित की।

समालोचकों के मत

उड़िया साहित्य के सुविज्ञ आलोचक नटवर सामंतराय ने 1955 में लिखे अपने विश्लेषण में इस आंदोलन के महत्व को रेखांकित करते हुए कहा कि यह आंदोलन बीस वर्ष पूर्व ही आरम्भ हुआ था, परन्तु उड़िशा के किसी अन्य साहित्यिक आंदोलन ने पाठकों की संवेदना में इतना गहरा रूपांतरण नहीं किया जितना इस आंदोलन ने किया। यह कथन इस बात का प्रमाण है कि यद्यपि उड़िया प्रगतिवाद अल्पजीवी रहा, फिर भी उसने उड़िया पाठक–समुदाय की सामाजिक चेतना पर स्थायी छाप छोड़ी। समालोचक बिजय कुमार सतपथी ने भी इस बात पर बल दिया है कि भागवती चरण और उनके साथियों के लिए मार्क्सवाद केवल राजनीतिक सिद्धांत नहीं था, अपितु साहित्यिक अभिरुचि में क्रांति लाने का एक वैचारिक उपकरण था।

दूसरी ओर, हिंदी प्रगतिवाद के संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा जैसे मार्क्सवादी समीक्षकों ने इस बात पर बल दिया कि प्रगतिवादी कविता का उद्देश्य किसानों–मजदूरों को संगठित कर उन्हें शोषण की वास्तविकता से परिचित कराना था, ताकि उनमें असंतोष के बीज बोए जा सकें और क्रांति की फसल तैयार हो सके। यह दृष्टिकोण उड़िया आलोचकों के इस मत से पूर्णतः मेल खाता है कि साहित्य को सामाजिक रूपांतरण का सशक्त माध्यम बनाया जाना चाहिए।

तुलनात्मक विश्लेषण: समानताएँ

हिंदी और उड़िया प्रगतिवादी कविता की तुलना करने पर कई महत्वपूर्ण समानताएँ स्पष्ट होती हैं:

1. **वैचारिक स्रोत की समानता:** दोनों आंदोलन मार्क्सवादी द्वंद्वात्मक भौतिकवाद से गहराई से प्रेरित थे और दोनों का संबंध किसी–न–किसी रूप में अंतरराष्ट्रीय प्रगतिशील लेखक आंदोलन (जिसकी स्थापना 1935 में लंदन में हुई थी) से जुड़ता है।

2. **पूर्ववर्ती रोमांटिक धारा की प्रतिक्रिया:** दोनों भाषाओं में प्रगतिवाद अपने–अपने पूर्ववर्ती रोमांटिक/कल्पनाप्रधान काव्यधारा की प्रतिक्रिया में उभरा कृ हिंदी में छायावाद के विरुद्ध, उड़िया में टैगोर–प्रेरित सबुज–आंदोलन के विरुद्ध।

3. **वर्ग–चेतना और सामाजिक यथार्थवाद:** दोनों धाराओं ने समाज को शोषक और शोषित वर्गों में विभाजित देखा तथा किसानों, मजदूरों और स्त्रियों जैसे उपेक्षित वर्गों की पीड़ा को साहित्य के केंद्र में रखा।

4. **संगठन और पत्रिकाओं की भूमिका:** दोनों आंदोलनों को संगठित रूप देने में साहित्यिक संस्थाओं और पत्र–पत्रिकाओं (हिंदी में "हंस", उड़िया में "अधुनिक" और "प्रगति") की केंद्रीय भूमिका रही।

5. **राजनीतिक सक्रियता से जुड़ाव:** दोनों ही धाराओं के अगुआ कवि–लेखक प्रत्यक्ष राजनीतिक आंदोलनों से जुड़े थे — हिंदी में प्रगतिशील लेखक संघ के सदस्य समाजवादी–साम्यवादी राजनीति में सक्रिय थे, तो उड़िया में भागवती चरण पाणिग्राही स्वयं उड़िशा में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के संस्थापक सचिव थे।

तुलनात्मक विश्लेषण: भिन्नताएँ

समानताओं के साथ–साथ दोनों काव्यधाराओं में उल्लेखनीय अंतर भी दिखते हैं:

1. **कालावधि और विस्तार:** हिंदी प्रगतिवाद, विशेष रूप से उसकी वैचारिक विरासत, लगभग दो दशकों (1936–1956 के आस–पास) तक हिंदी साहित्य की मुख्य धारा में सक्रिय रहा और आगे प्रयोगवाद व नयी कविता जैसी धाराओं को भी प्रभावित करता रहा। इसके विपरीत, उड़िया प्रगतिवाद अपने संगठित रूप में अत्यंत अल्पजीवी रहा — भागवती चरण पाणिग्राही की असामयिक मृत्यु (1943) और गांधीवादी तथा राष्ट्रवादी धाराओं के प्रभुत्व के कारण यह आंदोलन शीघ्र ही मुख्यधारा से हाशिये पर चला गया।

2. **विधागत संतुलन:** हिंदी प्रगतिवाद में कविता स्वयं आंदोलन की मुख्य अभिव्यक्ति–विधा रही, जबकि उड़िया प्रगतिवाद में कविता के साथ–साथ लघुकथा और निबंध को भी समान महत्व मिला — भागवती चरण पाणिग्राही स्वयं मूलतः कथाकार के रूप में अधिक प्रतिष्ठित हुए, कवि के रूप में उनसे अधिक अनंत पटनायक का नाम कविता से जुड़ता है।

3. **उद्भव–स्थल की भिन्नता:** हिंदी में प्रगतिवाद छायावाद के भीतर से ही क्रमिक रूप से विकसित हुआ (पंत की "युगवाणी" इसका प्रमाण है), जिससे दोनों धाराओं में एक निरंतरता दिखती है। उड़िया में यह विभाजन कहीं अधिक तीव्र और पारिवारिक स्तर तक व्यक्तिगत था — कालिंदी चरण और भागवती चरण जैसे सहोदर भाई दो विरोधी खेमों के प्रतिनिधि बन गए, जो वैचारिक टकराव की तीव्रता को दर्शाता है।

4. **भाषा–शैली का अंतर:** हिंदी प्रगतिवादी कविता ने कजरी, ठुमरी, लावनी जैसी लोक–गीत शैलियों को अपनाकर जनसाधारण से सीधा संपर्क स्थापित करने का प्रयास किया। उड़िया प्रगतिवादी लेखन में भाषा अधिक निबंधात्मक और वाद–विवादपरक रही, विशेष रूप से "अधुनिक" पत्रिका के लेखों में, जो सीधे विश्व–राजनीति और दार्शनिक प्रश्नों से जूझते थे।

5. **संस्थागत जुड़ाव की प्रकृति:** नवजुग साहित्य संसद प्रत्यक्षतः उत्कल कांग्रेस समाजवादी संघ की सांस्कृतिक शाखा के रूप में कार्य करता था, यानी साहित्यिक संगठन राजनीतिक दल से औपचारिक रूप से बँधा था। हिंदी का प्रगतिशील लेखक संघ इस अर्थ में अधिक स्वायत्त साहित्यिक मंच था, जिसमें विभिन्न राजनीतिक झुकाव के लेखक शामिल हो सकते थे।

6. **ऐतिहासिक मान्यता में अंतर:** हिंदी प्रगतिवाद को साहित्येतिहास में सुस्थापित और सुपरिचित स्थान मिला है, जबकि विद्वानों ने यह भी बताया है कि उड़िया प्रगतिवाद तथा भागवती चरण पाणिग्राही के योगदान को राष्ट्रीय स्तर के साहित्येतिहासकारों ने प्रायः विस्मृत रखा है, जिससे यह क्षेत्रीय आंदोलन अखिल भारतीय विमर्श में उपेक्षित रह गया।

निष्कर्ष

हिंदी और उड़िया प्रगतिवादी काव्यधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि 1930 के दशक में भारत के विभिन्न भाषा–क्षेत्रों में एक समान वैचारिक चेतना — मार्क्सवाद से प्रेरित सामाजिक यथार्थवाद — एक साथ प्रस्फुटित हुई, परन्तु प्रत्येक क्षेत्र की अपनी सामाजिक–राजनीतिक परिस्थितियों, साहित्यिक परंपराओं और संस्थागत ढाँचे ने इस चेतना को भिन्न–भिन्न स्वरूप दिए। हिंदी प्रगतिवाद जहाँ छायावाद की निरंतरता में विकसित होकर एक दीर्घजीवी और व्यापक साहित्यिक आंदोलन बना, वहीं उड़िया प्रगतिवाद प्रत्यक्ष राजनीतिक संगठन से जुड़कर अधिक तीव्र परन्तु अल्पजीवी सिद्ध हुआ। दोनों धाराओं ने अपने–अपने भाषा–क्षेत्र के पाठकों की सामाजिक चेतना को गहराई से प्रभावित किया और साहित्य को शोषित वर्गों की आवाज़ बनाने का ऐतिहासिक कार्य किया। यह तुलनात्मक अध्ययन भारतीय साहित्य में क्षेत्रीय प्रगतिशील आंदोलनों के अंतर्संबंधों को समझने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है और यह भी संकेत देता है कि उड़िया जैसी क्षेत्रीय भाषाओं के प्रगतिशील योगदान को अखिल भारतीय साहित्येतिहास में समुचित स्थान दिया जाना अभी भी शेष है।

संदर्भ सूची

1. ″हिंदी साहित्य में प्रगतिवाद।″ विकिपीडिया, hi.wikipedia.org.
2. ″प्रगतिवाद (1936–1956): उद्भव, कवि, विशेषताएं, प्रवृत्तियाँ। ″knowledgesthali.com.
3. ″प्रगतिवाद — विशेषताएँ एवं प्रमुख कवि।″ PragyaAB, pragyaab.com.
4. ″प्रगतिवाद की दो विशेषताएं।″ mpboardonline.com.
5. ″हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास (आधुनिक काल)/प्रगतिवाद की अवधारणा और काव्य आंदोलन।″ विकिपुस्तक, hi.wikibooks.org.
6. “From Green to Red: A Synoptic Genealogy of the Progressive Literary Movement in Odisha (1930–19506 Springer Nature Link, link.springer.com.
7. Kalindi Charan Panigrahi. Wikipedia, en.wikipedia.org.
8. “Odia Literature.” Wikipedia, en.wikipedia.org.
9. Bhagabati Charan Panigrahi. Wikipedia, en.wikipedia.org.
10. ″ओड़ीशा के तमाम शायर और लेखक की सूची।″ Hindwi, hindwi-org
11. Quest for a New Epoch: Progressive Movement in Odia Literature.” researchgate.net.